ब्रह्म ज्ञान मार्गदर्शन अन्नपूर्णा उपनिषद प्रथम वाच्य

गुरु जी बहुत प्रसन्न थे कि, कई वर्षों के पश्चात् उनका एक प्रिय शिष्य, उनके आश्रम में आया है. उनको यह आश्चर्य भी था, कि वह नितांत अकेला आया है. गुरु जी को कुछ चिंता हुई और उन्होंने अपने बाकी शिष्यों को अपनी कुटिया से बाहर जाने को कहा. एकांत पा कर शिष्य ने भर्राये गले, अश्रुओं से सजल आखों और रुंधे हुए स्वर में गुरु जी के चरणों में गिरते हुए, हाथ जोड़ कर पूछा, गुरूजी, जिस तरह जल में रह कर हम भीगने से नहीं बच सकते, जिस तरह अग्नि में हम ताप से नहीं बच सकते, इस माया में हम बिना छले अथवा धोखा खाये कैसे रह सकते हैं? गुरु जी, कई दिनों से मेरे बीते हुए जीवन के निर्णय व कर्म, मुझे बार बार याद आ कर लज्जित कर रहे हैं. मुझे किसी भी कार्य में, ठीक से परिणाम न पाने का कारण, मैं बार बार अपमानित हो रहा हूँ और मुझे यह सब शूल की तरह चुभ रहा हैं. अपने भविष्य की चिंता मुझे खाये जा रही है? मेरी वासनाये व इच्छाएं कम होने का नाम ही नहीं ले रही हैं. मेरे जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिस पर मैं गर्व कर सकूं. मैं अपने घर में भी कोई योगदान नहीं दे पा रहा हूँ? न मैं अच्छा नागरिक बन पाया, ना ही अच्छा शिष्य बन पा रहा हूँ, और न ही घर का एक अच्छा सदस्य. यह दुःख मेरे मन और बुद्धि को नर्क की अग्नि समान, तीव्र अग्नि में लगातार झुलसा रहा है. कृपया मेरा मार्ग दर्शन कीजिये , मुझे वह ज्ञान दीजिये, कि मैं इस अनंत दुःख के सागर से बाहर आ सकूं और अपने जीवन को सुधार सकूं. मैं बहुत व्यथित हूँ, मेरा आत्मविश्वास टूट चुका है. मैं एक अंधकूप में गिर गया हूँ, मुझे कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा, केवल आप ही मेरा उद्धार कर सकते हो. गुरु जी, मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे इस अविश्वास से विश्वास की तरफ ले चलो, मुझे इस अन्धकार से प्रकाश कि तरफ ले चलो. मुझे उस मार्ग में आगे बढ़ा दो, कि मुझे कभी इस तरह के भीषण दुःख से न पीड़ित होना पड़े. मुझे ऐसा रास्ता दिखाओ कि मैं अविचिलित हो कर, कभी अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूं.

गुरु जी ने अपने शिष्य को कन्धों से पकड़ कर उठाया और सामने रखे आसन पर बैठने को कहा. गुरु जी ने अपने कमंडल से थोड़ा जल अपने शिष्य पर छिड़का और कुछ जल आचमन के लिए दिया. शिष्य का मन थोड़ा शांत और स्थिर हुआ. गुरु जी बोले, तुम मेरे प्रिय शिष्यों में एक हो, मैं तुझे यह गूढ़ ज्ञान जरूर दूंगा, अभी तुम थोड़ा विश्राम करो.

सायंकाल में गुरूजी ने अपने, प्रिय शिष्य समेत तथा सभी प्रबुद्ध प्रज्ञावान शिष्यों और शिक्षकों को विशेष चिंतन व ज्ञान कक्ष में बुलाया. गुरूजी ने माँ अन्नपूर्णा को स्मरण और स्तुति कर, कहा आज मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दूंगा, तुम सभी अपने मन बुद्धि और चित को शांत व एकाग्र कर, सावधान हो कर सुनो.

इस जगत में माया सर्वशक्तिशाली है, माया, स्वयं ईश्वर की शक्ति से संपन्न है और इसी शक्ति के कारण माया को कभी हराया नहीं जा सकता. अर्थात जो भी माया करती है, उसे ईश्वर की शक्ति ही प्रेरित कर रही होती है, जैसे एक कलम को हम पकड़ कर तख्ती पाटी अथवा भोज पत्र पर लिखते हैं. कलम की अपनी शक्ति नहीं होती, ना ही कलम के पास कोई ज्ञान है, वह केवल लेखक की शक्ति और ज्ञान द्वारा ही, प्रेरित हो कर भोज पत्र में अक्षर, शब्द और वाक्य उभार देती है. इस जगत में यह कार्य ईश्वर करते हैं, वही कर्ता है और उनसे शक्तिशाली कोई नहीं है. इसलिए यदि हमारा संकल्प व लक्ष्य माया से बचाव है, बाधित होना नहीं है, तो हमें ईश्वर के ज्ञान की परम आवशयकता है. ज्ञान द्वारा ही माया को निकृष्ट और अन्यथा किया जा सकता है. ईश्वर के इसी ज्ञान को ही ब्रह्मज्ञान कहते हैं.

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में सबसे बड़ा व्यधान हमारे अज्ञान का ज्ञान है. अज्ञान के ज्ञान का अर्थ है वह ज्ञान जो जीव ने अपने अनुभव, प्रज्ञा, इच्छा, वासना और किसी भी ढंग से जीवन में प्राप्त किया है, जैसे शिक्षा , मित्रों और शुभचिंतको द्वारा दिया गया ज्ञान आदि. इसी अज्ञान के कारण न तो हम आत्मा को जान पाते हैं और न ही ब्रह्म को. हमें माया ने भ्रम व छल में घेरा हुआ है, और यह भ्रम इतना प्रबल है कि, दृढ़ ज्ञान ने बाद भी, इस भ्रम को हम अन्यथा नहीं कर पाते. जैसे हमको ज्ञात भी होता है कि गुरुकुल से घर तक की राह सुरक्षित है, लेकिन रात्रि के समय हमें लगतार अनजाना भय घेर लेता है और हम रात्रि की यात्रा करने में असहज रहते हैं.

अन्नपूर्णा उपनिषद के प्रथम अध्याय के मन्त्र 13, में माँ ने बताया है कि पांच तरह के भ्रम जीव को ब्रह्मज्ञान अथवा ईश्वर से दूर रखते हैं और हमें अज्ञान के आवरण से बाहर नहीं आने देते. यदि हम इन भ्रमों को जान लें और इनकी निवृत्ति कर लें तो ब्रह्म को जान लेने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है.

भ्रमः पञ्च विधो भाति तदे वेह समुच्यते.
यहाँ पांच प्रकार के भ्रम हैं, जो एक ही वस्तु के हैं और हमें भ्रम ही सत्य लगते हैं.
जीवेश्वरौ भिन्न रूपा विति प्राथमिको भ्रम.
पहला भ्रम है कि जीव (व्यक्ति) और ईश्वर (ब्रह्म) अलग-अलग हैं.
आत्म निष्ठं कर्तृ गुणं वास्तवं वा द्वितीयक .
दूसरा भ्रम है कि आत्मा में कार्य करने की शक्ति है और वह वास्तविक है.
शरीर त्रयसंयुक्त जीवः सङ्गी तृतीयक.
तीसरा भ्रम है कि जीव शरीर, (स्थूल, सूक्ष्म, और कारण), से जुड़ा हुआ है और वह संगी (बंधन) में है.
जगत्कारण रूपस्य विकारित्वं चतुर्थक.
चौथा भ्रम है कि, जगत कारण रूप में विकारित है (अर्थात, बदलता है).
कारणा द्भिन्न जगतः सत्यत्वं पञ्चमो भ्रम.

पाँचवाँ भ्रम है कि जगत कारण से अलग और सत्य है.

माँ ने इन पांच भ्रमों से निवृत्ति के उपाय और ज्ञान भी दिया.

1. बिम्ब प्रतिबिम्ब दर्शनेन भेद भ्रमो निवृत्त.

बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से प्रथम भ्रम निवृत अथवा हट जाता है.

2. स्फटिक लोहित दर्शनेन पार मार्थिक कर्तृत्व भ्रमो निवृत्त.

स्फटिक और लाल पुष्प व वस्त्र के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से पारमार्थिक कर्तित्व का भ्रम, द्वितीय भ्रम निवृत अथवा हट जाता है.

3. घट मठाकाश दर्शनेन सङ्गी तिभ्रमो निवृत्तः .

घटाकाश मठाकाश के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से पृथकता का भ्रम, तृतीया भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.

4. रज्जु सर्प दर्शनेन कारणा द्भिन्न जगतः सत्यत्व भ्रमो निवृत्त.

रस्सी और सर्प के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से कारण जगत और सत्य से अलग है का भ्रम, चर्तुथ भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.

5. कनक रुचक दर्शनेन विकारित्व भ्रमो निवृत्त .

स्वर्ण और स्वर्ण निर्मित वस्तु से स्वर्ण में विकार नहीं आता, इस दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से कार्य से कारण में विकार आ जाता है का भ्रम, पंचम भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.

अब एक एक कर इन मन्त्रों का विस्तार से अध्ययन कर, ज्ञान की प्राप्ति की चेष्टा करते हैं.

यह पहला भ्रम है कि जीव और ईश्वर अलग-अलग हैं. और बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से यह भ्रम निवृतअथवा हट जाता है.

जीव और ईश्वर एक ही हैं, जैसे एक दर्पण में सूर्य की किरण पड़े, तो हमें दर्पण में सूर्य के दर्शन हो जाते हैं. वह प्रतिबिम्ब सूर्य से अलग नहीं होता है. यदि दर्पण को तोड़ दिया जाए या नष्ट कर दिया जाए तो भी सूर्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता. और दर्पण के टूटने अथवा नष्ट होने से, प्रतिबिम्ब पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता. अर्थात यदि किसी दूसरेदर्पण को लाएं तो वह प्रतिबिम्ब फिर से, बिना किसी विकार के दिखलाई देने लगेगा. प्रतिबिम्ब दर्पण में दीखता जरूर है, लेकिन वह दर्पण के अंदर नहीं होता, न ही दर्पण ने उस प्रतिबिम्ब का निर्माण किया है. सूर्य की उपस्तिथि ही दर्पण में प्रतिबिम्ब को दिखा देती है. यदि दर्पण में प्रतिबिम्ब न हो तो केवल सूर्य ही शेष रहता है.

वास्तव में दर्पण रुपी माया, सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखा कर यह भ्रम बना देती है कि सूर्य अलग है और दर्पण वाला सूर्य अलग है, लेकिन इस अज्ञान को केवल इस सत्य से दूर किया जा सकता है, की बिम्ब की कारण ही दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई दिया है, अन्यथा प्रतिबिम्ब है ही नहीं, केवल बिम्ब ही सत्य है.
इसी भ्रान्ति पर प्रभु कृष्ण जी की एक बाल कथा भी बहुतप्रचलित है. एक बार राधा जी ने, अपनी चुनरी में लगे एक चांदी के बटन में, कान्हा जी को, चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखा कर बोला कि मेरे पास तो चाँद है, तुम्हारे पास है क्या? कान्हा जी बोले, नहीं मेरे पास तो नहीं है. राधा जी बोली, तेरे पास तो केवल एक छोटी सी लाठी है गाय को चराने वाली और कुछ भी नहीं है, बिलकुल गरीब. यह कह कर राधा जी उठ कर अपने घर चली गईं
कान्हा जी उदास हो गए, जान कर कि राधा जी के पास चाँद है और वह बहुतधनवान है, मेरे पास कुछ नहीं. यह सोच सोच कर वह और उदास हो गए कि राधा उनसे अब बात भी नहीं करेगी. रोते रोते घर पहुंचे, तो यशोदा जी ने देखा कान्हा जी उदास हैं, उन्होंने पुछा कान्हा क्या बात है?. कान्हा जी ने बता दिया कि राधा कितनी धनवान है, उसके पास तो चाँद भी है. मेरे पास केवल ये बांस की लाठी. यशोदा जी हंस पड़ी और बोली, राधा के पास कोई चाँद वांद नहीं है, वो तुझे चिड़ा रही है. कान्हा जी बोले, नहीं मैंने खुद देखा है, उसके चांदी के बटन के अंदर ये आसमान वाला चाँद है, सच्ची का. मैया समझ गई, कि राधा ने कैसे कान्हा जी को बुद्दू बना दिया है, और फिर कान्हा जी को बहुत समझाते हुएबोला वह चाँद तो चांदी के बटन में प्रतिबिम्ब है, और कुछ नहीं. कान्हा जी कहाँ मानने वाले थे, और रोने लगे. तभी एक ग्वालन आयी उसने कान्हा जी के सामने चांदी की थाली में पानी भर कर रख दिया, और उसमे चाँद के प्रतिबिम्ब को दिखा कर बोली, ले तेरे लिए भी मैं चाँद ले आयी. तब जा कर कान्हा जी प्रसन्न हुए
इस तरह प्रतिबिम्ब का कोई अस्तित्व नहीं है, केवल माया के कारण वह बिम्ब से अलग दिखाई पड़ता है, वास्तव में प्रतिबिम्ब और बिम्ब एक ही हैं.

ठीक वैसे ही, जीव और ब्रह्म भी एक ही हैं, केवल माया के कारण, जीव अपने को ब्रम्ह से अलग देखता है. ब्रह्म ही सत्य है.

2. आत्म निष्ठं कर्तृ गुणं वास्तवं वा द्वितीयक.
यह दूसरा भ्रम है कि आत्मा में कार्य करने की शक्ति है और वह वास्तविक है.
स्फटिक लोहित दर्शनेन पार मार्थिक कर्तृत्व भ्रमो निवृत्त
स्फटिक और लाल पुष्प व वस्त्र के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से पारमार्थिक कर्तित्व का भ्रम.

जीव में यह भ्रम होता है कि आत्मा ही कर्ता है अथवा जो भी कर्म जीव करता है उस का कर्तापन आत्मा में है. अर्थात जो भी कार्य जीव करता है, वह कार्य आत्मा का ही है.

सबसे पहले हमें पहले आत्मा और जीव के अंतर को समझना होगा, उसके बाद ही इस भ्रम को दूर करने के ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है.

आत्मा उपनिषद तथा माण्डूक्य उपनिषद में देह, सूक्ष्मदेह और अन्तरदेह के बारे में विस्तार से चिंतन किया गया है. हम उस विस्तार में तो नहीं जा सकते लेकिन एक कथा के माध्यम से इसे बतलाने की कोशिश करते हैं. उदयन एक बालक का नाम है. वह एक बहुत मेहनती बालक है, शिक्षा में उसका मन नहीं लगता, लेकिन खेल कूद में बहुत तल्लीनता से भाग लेता है और समय पर अभ्यास और जरूरी व्यायाम करता है. परीक्षाओं में उसे अच्छे नंबर नहीं मिलते , लेकिन पूरे जिले में वह खेल कूद में अव्वल विद्यार्थी है.

अर्थात उदयन ने मेहनत की, इसलिए उदयन को उसका लाभ हुआ. उदयन एक देह का नाम है, जिससे उदयन कहता है कि यह मैं हूँ. जब उदयन बड़ा हो गया, उसका मुख्य कार्य खेती बाड़ी था, कभी खेती बहुत अच्छी होती कभी खेती में कई फसल बिना जल के, कभी अति वृष्टि के खराब हो जाती. एक बार कई वर्षों तक वर्षा नहीं हुई, उदयन को ठीक से भोजन भी नहीं मिला, और वह बहुत कमजोर हो गया कि देह में हड्डियां भी दिखने लगी. उसने अपने को एक दर्पण में देखा और अपने को पहचान ही नहीं पाया. तब उसे आश्चर्य हुआ कि, जब भोजन ठीक मिलता है तो देह सुगठित सुघड़ रहती है, जब भोजन नहीं मिलता तो देह सिकुड़ जाती है, लेकिन मैं तो वही हूँ. अर्थात मैं देह नहीं हूँ, यह देह केवल अन्न पर ही निर्भर है. मैं अभी भी वही हूँ, जिसने इस देह का बचपना देखा, इस देह का यौवन देखा, इस देह को अब ढलते हुए भी देख रहा हूँ. जब मैं सो रहा होता हूँ, तब देह नहीं होती, मैं जागृत अवस्था में नहीं होता, घुप अंदर में सोने पर भी, आखें बंद होने पर भी, मैं स्वप्न में भी देख रहा होता हूँ, मैं वहाँ भी होता हूँ. अर्थात मैं यह देह नहीं हूँ. जो किसी दृश्य को देख रहा है, वह दृष्टा होता है, दृश्य का हिस्सा नहीं होता. जो व्यक्ति कोई नाटक देख रहा होता है, तो वे दर्शक होता है, नाटक का पात्र नहीं. अर्थात मैं यह स्थूल, दिखाई पड़ने वाली देह नहीं हूँ.

मैं सूक्ष्म देह हूँ, जो इस देह से जीवन में सुख और दुःख को भोग रहा है. सूक्ष्म देह के १९ अंग हैं. ५ ज्ञान इंद्री, ५ कर्म इंद्री, ५ प्राण और १ अंतर चातुष्टय. ५ ज्ञान इंद्री, ५ कर्म इंद्री और ५ प्राण सूक्ष्म देह के बाहरी अंग है जो स्थूल देह के परिचालन आदि को सक्रीय रखते हैं. अर्थात यह बाहरी सूक्ष्म देह, स्थूल शरीर को चलायमान अवस्था में रखती है. यह १५ तत्त्व पांच महा भूतों के अल्प या मलिन सतगुण अंश से बने होते हैं, इसलिए इनमे ज्ञान अल्प रूप से संचारित हो सकता है जिससे कि यह बुद्धि से निर्देश ले कर अपने अपने कार्य कर सकें. १ अंतर चातुष्टय में चार अंग होते हैं, मन बुद्धि चित्त और अहम् आकार. कुल मिला कर १९ तत्वों से सूक्ष्म शरीर बना होता है. जिसे जीव भी कहा जाता है और कभी कभी इसे ही आत्मा भी कहा जाता है. यह अमर है, और ब्रम्हा जी का ही अंश है, जैसे महासागर के जल की एक बूँद महासागर का अंश होती है.

व्यस्टि अर्थात अलग अलग रूप में इसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं और समष्टि रूप में, अर्थात सभी सूक्ष्म शरीरों को मिला कर, इसे सूत्रात्मा अथवा ब्रह्मा जी भी बोलते हैं.

मन की रचना वायु के मलिन सतगुण अंश से हुई है, इसलिए वह अनंत रूप रच लेती है और पूरे चिदाकाश (अपने ही ज्ञान में) अनंत आकाश को रच लेती है. संकल्प विकल्प ही इसका काम है. इसकी अपनी कोई सीमा नहीं है.

चित्त की रचना जल के मलिन सतगुण अंश से हुई है, इसलिए इसमें स्मृति की अनंत क्षमता है और अभी तक के अनंत जन्मो की कर्म स्मृति, ज्ञान स्मृति, चित्त में ही सुरक्षित रहती है. चित्त में सुरक्षित ज्ञान, भाषा, देश, जगत पर निर्भर नहीं है, कोई शरीर, जो भी ज्ञान व कर्म करता है, वह चित्त में अनुभव के रूप में सुरक्षित हो जाता है. चित्त में प्रवेश का अधिकार किसी भी तत्त्व को नहीं है, चित्त केवल स्मृति ग्रहण करता है. यह केवल एकांगी मार्ग़ है. लेकिन कभी कभी चित्त , जीव को, अपने पूर्व ज्ञान से आगाह कर देता है, इसे हम अपनी अंतरात्मा की आवाज़ भी कहते हैं.

बुद्धि की रचना अग्नि के मलिन सतगुण अंश से हुई है, इसलिए यही तत्त्व, ज्ञान को, मन के द्वारा इन्द्रियों से ग्रहण किये हुए ज्ञान को, संचित कर उसका मंथन करती है और निर्णय लेती है. कई बार चित्त गुप्त रूप से बुद्धि को आगाह कर देता है और बुध्दि अपने किसी भी संशय अथवा उपाहपोह से बाहर आ कर निर्णय ले लेती है. ईश्वर ने भी गीता पन्द्रवें अध्याय के पन्द्रवें श्लोक में भी कहा है. "सर्वस्य चाहं हृदि सन्नि विष्टो मत्तः, स्मृतिर्ज्ञान आपोहनं च" . अर्थात मैं सभी के ह्रदय में रहता हूँ और मैं ही सभी की स्मृति (चित्त) हूँ और सभी को उपाह पोह अथवा कश्मकश अथवा असमंजस की स्थिति में ज्ञान दे कर, दुविधा से बाहर निकाल कर निर्णय कि क्षमता देता हूँ.

अहम् आकर, जिसे अहंकार भी कहते हैं, पृथ्वीतत्त्व से बना है, जैसे ही बुद्धि, चित्त और मन जागृत हो जाते है अथवा इनमें ज्ञान का संचार प्रारम्भ हो जाता है, तो पृथ्वीतत्त्व को अपने होने का ज्ञान व भान हो जाता है कि यह मैं हूँ. यही तत्त्व , मैं का वाचक है.

सूक्ष्म शरीर के सभी तत्त्व पांच महा भूतों के मलिन सतगुण अंश से बने हैं और जिस तरह पांच महा भूत जड़ तत्त्व हैं, उनसे बने सभी शरीर अथवा तत्त्व भी जड़ ही होंगे. जैसे पृथ्वी जड़ तत्त्व है, इसमें किसी तरह की ऊर्जा का संचार नहीं होता, यदि किसी विद्युत् का प्रवाह पृथ्वी में डाला जाए तो वह प्रवाहित नहीं होगी. यदि पृथ्वी से इसके मलिन सतगुण अंश को धातु वर्धन से अलग कर लिया जाए, जैसे ताम्बा, जस्ता, लोहा आदि, उसमे विद्युत् का संचार हो जाता है. लेकिन वह तत्त्व भी जड़ ही होते हैं. जड़ का अर्थ है उनमे ज्ञान नहीं होता, उनको कोई ज्ञान दे भी नहीं सकता. उनसे केवल संचार और संचार जनित कार्य ही किये जा सकते हैं. इसी तरह सूक्ष्म शरीर के तत्त्व भी जड़ ही माने जाएंगे, वे जड़ ही हैं.

केवल बुध्दि है, जो अग्नि तत्त्व से बनी है और उसमे ही ज्ञान रुपी, ईश्वर का प्रतिबिम्ब आ सकता है. इसलिए केवल बुद्धि में ही सर्व प्रथम ज्ञान का प्रतिबिम्ब पड़ा और इसी प्रतिबिम्ब से बुद्धि जागृत हो गई. बुद्धि से ज्ञान संचारित हो कर मन और चित्त में गया और उनको भी प्रकशित कर दिया और अहम् कार को अपने होने का भान प्रकट हो गया, कि यह मैं हूँ.

जो ज्ञान या ईश्वर का प्रतिबिम्ब बुद्धि पर पड़ा, उस प्रतिबिम्ब को चिदाभास कहते हैं. व्यष्टि रूप से एक बुद्धि को बुद्धि कहते हैं और समष्टि रूप से अथवा सब बुद्धियों को मिला दो तो, इसे महत तत्त्व कहते हैं, यही ब्रम्हा जी का प्रथम अंश है अथवा स्वयं ब्रह्मा ही हैं.

पूरे शरीर में केवल यही, चिदाभास ही, एक मात्र चेतन तत्त्व है, जो सारे सूक्ष्म शरीर को चेतन मय करता है, और सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर को नियंत्रित व चालयमान बनाता है.

आत्मा ही वास्तव में कर्ता है, यह एक भ्रम है. आत्मा अर्थात बुद्धि में पड़ा ईश्वर का प्रतिबिम्ब में कोई कर्ता पन नहीं है, आत्मा कुछ नहीं करती, यह केवल सूक्ष्म शरीर को अपनी चेतना से चेतन रखती है, और सूक्ष्म शरीर अपनी प्रवृत्तिसे, स्थूल शरीर को प्रेरित कर, उसकी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है. अर्थात आत्मा अपनी ऊर्जा से सूक्ष्म शरीर को जागृतकरता है, और स्थूल शरीर सजीव हो जाता है.

एक दृष्टान्त है, एक बार एक कमरे में केवल एक ही विद्युत् बिंदु था, जब भी किसी को कोई कार्य होता तो वे उस बिंदु पर अपनी मशीन लगा कर चला लेते. यदि उस बिंदु पर पंखा लगाते तो पंखा घूमे लगता और हवा देने लगता, यदि बल्ब लगाते तो बल्ब प्रकाश देने लगता. अर्थात विदूयतका कार्य केवल मशीन को जागृतकरना है, मशीन क्या कार्य करती है, विद्युत् को इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता. मशीन अपनी प्रकृति अथवा जिस कार्य के लिए बनाई है वही कार्य करेगी, अर्थात पंखा प्रकाश नहीं दे सकता और बल्ब घूम घूम कर हवा नहीं दे सकता, जब कि दोनों में विद्युत् एक ही है.

यदि हम यह कहे कि विद्युत् हवा दे रही है, अथवा विद्युत् प्रकाश दे रही है, तो यह भ्रम है, विद्युत् केवल एक ऊर्जा है, बाकी उस ऊर्जा को मशीन अपनी प्रकृति अनुसार कार्य में परिवर्तितकर रही है.

शरीर में भी, सूक्ष्म शरीर को चिदाभास ऊर्जा देता है और सूक्ष्म शरीर देह से कार्य करना शुरूकर देता है. इस प्रकरण से ऐसा लगता है कि जैसे चिदाभास ही कार्य कर रहा है अथवा चिदाभास ही शरीर के रूप में कार्य कर रहा है.

जैसे के स्फटिक मणि, जो कि विशुद्ध रूप से पारदर्शी होती है, उसमे किसी भी रंग का लेश मात्र भी अंश नहीं होता, लेकिन यदि वह किसी लाल कपडे अथवा लाल फूल के पास रख दी जाए तो, स्फटिक को दूरसे देखने में लाल रंग की दिखाई पड़ने का भ्रम हो जाता है. ठीक वैसे ही आत्मा अथवा चिदाभास एक विशुद्ध ज्ञान ऊर्जा है, उसमे कुछ भी कर्तापन नहीं है, लेकिन सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर में आने के कारण वह शरीर का ही भान देने लगती है, वास्तव में वह इस से पूरी तरह स्वतंत्र, अविचल और विकार हीं है.

इससे यह सिद्ध होता है कि केवल जड़ शरीर अथवा प्रकृति ही कर्म करती है और कर्म का भाव केवल प्रकृति अथवा शरीर में हैं, चेतन तत्त्व आत्मा, चिदाभास में किसी भी तरह का कोई कर्म नहीं है. वह केवल शरीर को चेतना प्रदान करती है.

इस तरह द्वितीय भ्रम की निवृत्तिहो जाती है. यदि इस ज्ञान को समझ ले तो यह भ्रम दूर हो जाता है, की आत्मा के कर्ता पन है.

तीसरा भ्रम, शरीर त्रय संयुक्त जीवः सङ्गी तृतीयक
यह तीसरा भ्रम है कि जीव शरीर, (स्थूल, सूक्ष्म, और कारण), से जुड़ा हुआ है और वह संगी (बंधन) में है.
घट मठा काश दर्शनेन सङ्गी तिभ्रमो निवृत्त
घटाकाश मठाकाश के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से पृथकता का भ्रम, तृतीया भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.
स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर को त्रि संयुक्त मान लेना यह तीसरा भ्रम है. अर्थात यह शरीर में जो सूक्ष्म शरीर है और जो कारण शरीर है, उनका अलग से अस्तित्व नहीं है, इसलिए वह सब एक ही हैं, यह एक भ्रम है.

इस भ्रम की निवृत्ति से पहले इस भ्रम को ही जान लेना सबसे उचित होगा. श्रुति कहती है की इस जगत में परमात्मा सर्व्यापक है, श्रुति यह भी बतलाती है कि आत्मा इस जगत में सर्व व्यापक है.

आत्मा और परमात्मा दोनों ही एक हैं, और दोनों भिन्न भिन्न भी है.

छान्दो ग्य उप निषद अनुसार, ईश्वर ने इच्छा की और इस सृष्टि का निर्माण हो गया.

अर्थात यह सृष्टि, माया के रजोगुण के प्रभाव से ईश्वर की इच्छा के अंदर ही प्रकट हुई, जैसे एक बालक अपनी सोच व कल्पना में एक पूरी कथा देख लेता है. जैसे एक बालक ने सोचा कि एक मेरे गाँव में एक हाथी आ गया है, सारे गाँव वाले, डर के मारे अपनी जान बचाने के लिए, इधर उधर भाग रहे हैं. गाँव की गाय भैसें भी भाग कर तालाब में चली गई. इतने में बालक ने कल्पना की, कि वह इतने में वहाँ पंहुचा और एक डंडे की सहायता से सब हाथियों को भगा दिया. सब गाँव वाले और उसके साथी मिल कर उस बच्चे का गुणगान कर रहे हैं.

अब यहां ध्यान देना कि, क्या बालक की कल्पना में जो भी आकाश, जंगल, हाथी, गाय भैंसे, गावों वाले आदि जो भी थे, वह सब केवल बालक कि कल्पना ही थी और वह बालक के अंश से ही बनी थी. अर्थात वहाँ बालक के असत रूप, क्योंकि बालक का सत रूप तो कल्पना कर रहा था, इसलिए उसे असत रूप ही कहा जाएगा, में मन ने पूरी कल्पना को रूप दे दिया. अर्थात वहाँ केवल बालक ही सब रूपों में

व्यापक था. इसलिए अब ऐसा कहा जाएगा कि बालक की कल्पना में, बालक के असत रूप ने पूरी कल्पना रची वह सृष्टि केवल बालक का ही अंश थी और बालक के अंदर ही स्थापित थी .

इसी तरह, परमात्मा की इच्छा में यह सृष्टि निर्मित हुई, अर्थात यहाँ परमात्मा असत रूप से सर्व व्यापक है, इसी असत रूप को आत्मा कहते हैं. परमात्मा का प्रतिबिम्ब बुद्धि पर पड़ने से जो चिदाभास बना, वही भी परमात्मा का असत रूप है, और उसे भी आत्मा कहते हैं.

इस तरह सृष्टि में आत्मा का दो तरह का स्वरुप परिभाषित होता है. एक वह स्वरुप जो, सर्वव्यापक रूप से सृष्टि में व्याप्त है और दूसरी जो प्रतिम्बित रूप से बुद्धि में प्रकट हो रहा है.

अब चिंतन इस पर होना चाहिए कि क्या हो आत्मा सर्वव्यापक है और जो आत्मा सूक्षम शरीर में हैं, क्या वह अलग अलग है? हमारी भ्रान्ति यह है कि शरीर से तीनो संयुक्त हैं, और अलग अलग नहीं हो सकते.

एक दृष्टान्त है. एक बार एक कुम्हार ने चाक से एक मटका बनाया. मटका अंदर से बिलकुल खाली होता है उसे उस मटके की पोलाई अथवा खाली स्थान कहते हैं. क्या उस मटके का खाली स्थान, आकाश और मटके के बाहर के खाली स्थान, आकाश में कोई अंतर है. यदि सांसारिक दृष्टि से देखो तो यही उत्तर है कि मटके का खाली स्थान मटके के अंदर है और बाहर का खाली स्थान मटके के बहार, दोनों अलग अलग हैं. यही भ्रान्ति हमको आत्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान नहीं होने देती.

जब मटका नहीं बना था, तो केवल एक ही आकाश था, जब मटका बन गया तो वही आकाश का अंश मटके के भीतर भी आ गया. अब यदि मटका फूट जाएगा, तो सत्य रूप से, फिर से, एक ही आकाश रह जाएगा. इसलिए यह केवल एक भ्रम ही है, कि मटके का आकाश अलग है और बाहर का आकाश अलग है.

इसको थोड़ा ठीक से समझने के लिए इसी दृष्टान्त को थोड़ा अलग ढंग से लेते हैं.

एक बच्चे ने अपने मटके को तालाब में डुबाया और बोला देखो मटके में पानी भर गया है. अब मटके में भी पानी भरा हुआ है और तालाब में भी पानी भरा हुआ है, अर्थात उसने मटके का पानी और बाकी तालाब के पानी अलग अलग जाना. क्या सत्य रूप से भी, वह दोनों पानी अलग अलग हैं? यदि मटका तालाब के अंदर ही फूट जाए तो क्या मटके के पानी को तब भी मटके का पानी बोलेंगे.

नहीं, दोनों पानी एक ही हैं, केवल मटके की वजह से दोनों पानी में भेद उत्पन्न हो रहा है.

ठीक ऐसे ही, जैसे ही शरीर नष्ट होता है, वही आत्मा (प्रतिबिम्ब), सृष्टि में व्याप्त आत्मा में मिल जाती है. और सूक्षम शरीर महत तत्त्व में. जब फिर शरीर बनता है तो वही आत्मा अर्थात ईश्वर का प्रतिबिम्ब, बुद्धि को चेतन कर देता है और जीव को अपने होने का भाव जा जाता है. यही इस भ्रम की निवृति है.

4. जगत्कारण रूपस्य विकारित्वं चतुर्थक.
यह चौथा भ्रम है कि, जगत कारण रूप में विकारित है (अर्थात, बदलता है).
रज्जु सर्प दर्शनेन कारणा द्भिन्न जगतः सत्यत्व भ्रमो निवृत्तः .
रस्सी और सर्प के दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से कारण जगत और सत्य से अलग है का भ्रम, चर्तुथ भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.

जगत कार्य है और आत्मा रुपी परमात्मा, इस जगत का कारण है. आत्मा रुपी परमात्मा का अर्थ है, परमात्मा का वह अंश, जिससे इस सृष्टि का निर्माण हुआ है और वह अंश इस जगत का कारण है.
निर्माण का अर्थ है, सतत परिवर्तन अर्थात लगातार निर्माण विध्वंस आदि पूरी सृष्टि में लगातार चल रहे हैं, और यह सृष्टि हर क्षण परिवर्तन को प्राप्त हो रही है. यह सृष्टि कभी स्थिर नहीं होती, और स्वाभाविक रूप से माया की तरह ही परिवर्तन शील है. इसलिए इस सृष्टि को अश्वथ भी कहते हैं. अश्वथ का अर्थ है जो कभी स्वाभाविक रूप से स्थिर न हो अर्थात लगातार परिवर्तन शील हो.

माया का निरूपण कई तरह से कर सकते हैं, इनमे साधारणत, 7 तरह का निरूपण प्रमुख व विख्यात है.

१. जल में चंद्र के प्रतिबिम्ब की तरह, सत रूप चन्द्रमा है, असत रूप माया, जल में पड़ा प्रतिबिम्ब है.
२. स्वप्न में सृष्टि की तरह, स्वप्न दृष्टा सत रूप है और स्वप्न की सृष्टि असत रूप माया है.
३. जगत में छाया की तरह, जगत में वस्तु सत रूप है, और उसकी छाया असत रूप माया है.
४. जागृत अवस्था में इच्छा की तरह, इच्छा करने वाला दृष्टा सत है और इच्छा रूप जगत, असत रूप माया है.
५. मरुस्थल में मृगमरीचिका की तरह, मरुभूमि सत रूप है और मृगमरीचिका, असत रूप माया है.
६. जल में उत्पन्न लहरें, जल सत रूप है और उसमे बनती लहरें, असत रूप माया है.
7. विवर्त रूप में अधिष्ठान सत रूप है, अर्थात अँधेरे में जमीन में पड़ी रस्सी सत रूप है और उसमे दिखता हुआ सर्प अथवा भूमि में आई दरार, असत रूप माया है.

इस कार्य रुपी जगत के निर्माण और लगातार परिवर्तन से, कारण रुपी आत्मा में भी परिवर्तन होता है. अर्थात यह जगत जो हमारे सम्मुख है, जिसे हम देख रहे हैं, जिसमे लगातार हमारी उप्तत्ति, पालना और संहार चल रहा है, वह सत रूप ही है और यही विकृत हो रहा है, यही कारण भी है और यही कार्य भी है. यह केवल एक भ्रम है, कि इस जगत का आत्मा रुपी अधिष्ठान पर प्रभाव पड़ता है और आत्मा में भी विकार आ जाता है. आत्मा का अर्थ है परमात्मा का अंश जो, पूरी सृष्टि में सर्वव्यापक है.
इसकी निवृत्ति के लिए, माँ उपनिषद में बताती है कि जैसे विवर्त का, अपने अधिष्ठान पर कोई असर नहीं हो सकता, वैसे ही इस जगत का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता. यह जगत तो आत्मा को छू भी नहीं सकता, इसलिए आत्मा अचल, अप्रभावित और परिवर्तनरहित है.

विवर्त और जगत को समझने हेतु एक दृष्टान्त है.

एक बार एक गावों के से कुछ दूरी पर एक बड़े सेतु का निर्माण हो रहा था. वह निर्माण स्थल, गावों और स्कूल, के रस्ते पर ही था. इसलिए जब बच्चे स्कूल जाते और आते, तो निर्माण स्थल पर भी उधम मचाते और यदि कुछ बेकार सामान पड़ा होता तो उसे भी उठा ले जाते. कभी लोहे के सरिये का टुकड़ा, कभी लकड़ी का फट्टा आदि, उसी से रस्ते भर खेलते और गावों पहुंच कर उसे दूर फेंक देते. एक बार एक बच्चे को बहुत मोती रस्सी का टुकड़ा दिखा, वह रस्सी उसे बहुत पसंद आयी, कि इस रस्सी से मैं गाये आदि को आराम से हाँक सकता हूँ, यह जोर से लगेगी भी नहीं.

घर पहुँच कर उसने देखा कि, घर का दरवाजे में ताला लगा हुआ है और उसकी माँ पास ही के मंदिर में भजन कीर्तन सुनने गई है. उसने वह रस्सी अपने घर के बगल में ही फेंक दी और अपनी माँ से चाबी लेने चला गया. घर आकर दरवाजा खोला और खाना खा कर आराम करने लगा. शाम हो गई, वह बालक खेलने चला गया, और खेल कर आते आते थोड़ी रात हो गई. वापस आते हुए उसने देखा कि उसके घर के आगे बहुत भीड़ लगी है और पंडित जी के सर पर चोट लगी है.

जैसे ही वह नज़दीक पंहुचा तो उसे पता चला कि गावो में एक बहुत भयंकर भुजंग सांप आ गया है, बहुत जोर से फुफकार रहा है, उसकी फुफकार से ही पंडित जी बेहोश हो गए थे और झाडी में गिर पड़े और उनको बहुत चोट भी आयी है. सब लोग जोर जोर से चिल्ला रहे थे. त्रियो दशी का दिन था, एक दिन बाद शिव रात्रि थी इसलिए , भगवन शंकर के दिन, सांप को मारने से बहुत बड़ा पाप लगेगा, यही सोच कर उसे मार भी नहीं रहे थे. कुछ लोग इसे महादेव जी का दूत मान रहे थे, तो कुछ लोग उस सांप की तुलना, महा भयंकर कालिया नाग की प्रजाति, से कर रहे थे. कुछ लोग मंजीरा ढोल आदि बजा

कर कीर्तन करने लगे थे. कोई उस नाग की तरफ भभूत फेंक रहे थे, कि वह चला जाए. कुछ लोग बोल रहे थे, कि यदि यह सांप यहां आया है तो इसके बच्चे भी आस पास ही होंगे. यह सुन कर सब गावों वाले और भी डर गए. उन्होंने दूसरे गावो के सपेरे को बुलवाया वह किसी विवाह में प्रदेश गया हुआ था. अब सब परेशान होने लगे, अपनी साक्षात् मृत्यु को देख कर, सर्दी में भी पसीने आ रहे थे.

बालक थोड़ा नज़दीक जाने लगा तो उसके चाचा ने उसे डांट दिया कि इतना भयंकर सांप है और तुझे पास से देखने का शौक चढ़ा है. बच्चे ने डांट खाते खाते सांप को देखा और डर गया, अरे बाप रे, यह तो वही रस्सी है, जो मैं आज निर्माण स्थल से उठा कर लाया था और यहां फेंक दी थी. उसने धीरे से यह बात अपने चाचा को बताई. चाचा ने उसे फिर डांट दिया, लगता है, बिना डांट खाये तुझे चैन नहीं आएगा. इतने में जल्दी से बालक उस सांप कि तरफ लपका और रस्सी को उठा लिया, और सबको दिखाते हुए बोला ये तो रस्सी है, मैंने गलती से यहां फेंक दी थी.

इसे विवर्त कहते हैं, जब प्रकाश बहुत कम होता है तो वस्तुऐं ठीक से नहीं दिख रही होती. ऐसे में यदि दीवार पर टंगी घडी को भी देखें तो उस घडी के किनारे कभी बहुत लम्बे, कभी बहुत छोटे कभी बिलकुल गायब से लगने लगते हैं.

अब उस सांप और रस्सी के बारे में चिंतन करें, तो क्या सांप सच था? क्या उस सांप की संतान भी हो सकती है? क्या उस सांप के होने से, उस रस्सी पर कोई विकार उत्पन्न होता है? .
नहीं बिलकुल नहीं होता.
ठीक ऐसा ही यह जगत है, जो लगातार परिवर्तित हो रहा है, लेकिन इस सभी प्रपंचों का आत्मा रुपी परमात्मा पर कोई विकार नहीं पड़ता. जैसे रस्सी है, वैसे ही आत्मा को अधिष्ठान कहा जाता है और जो दिखाई देता है उसे विवर्त कहते हैं. अर्थात रस्सी ही सत्य थी, और रस्सी के होने के कारण ही सांप आदि, विवर्त के रूप में दिखे. यदि रस्सी न होती तो, सांप भी नहीं हो सकता था.

ठीक इसी तरह, ईश्वर है, आत्मा है और उसी आत्मा की उपस्थिति के कारण, यह जगत भी एक विवर्त कि भाँती दिखाई पड़ता है, सत्य तो केवल ईश्वर है, जो कि इस विवर्त से किसी भी रूप से जुड़ा हुआ नहीं है और विवर्त का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता.

इस तरह इस भ्रान्ति अथवा भ्रम की निवृत्ति हो जाती है कि, जगत का आत्मा पर कोई प्रभाव पड़ता है और आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है.

5. कारणा द्भिन्न जगतः सत्यत्वं पञ्चमो भ्रम .
यह पाँचवाँ भ्रम है कि जगत कारण से अलग और सत्य है.
कनक रुचक दर्शनेन विकारित्व भ्रमो निवृत्त .

स्वर्ण और स्वर्ण निर्मित वस्तु से स्वर्ण में विकार नहीं आता, इस दृष्टान्त, चिंतन, दर्शन, ज्ञान से कार्य से कारण में विकार आ जाता है का भ्रम, पंचम भ्रम, निवृत अथवा हट जाता है.

पंचम भ्रम यह है कि यह जगत जो, कि ईश्वर द्वारा रचित, माया का ही कार्य है, ईश्वर से अलग है अर्थात जगत कार्य रूप है और ईश्वर कारण रूप, जब भी जगत की उत्पत्ति और विनाश होगा, यह ईश्वर से अलग ही होगा, वार्ना ईश्वर पर भी विकार आएगा.
यह जगत और ईश्वर अलग अलग है, यही पंचम भ्रम है.
सत्य तो बिलकुल इससे उलट है. श्रुति बताती है कि ईश्वर ने ही स्वयं , सृष्टि व अनंत जीवों, का रूप धारण कर सृष्टि और जगत की रचना की. यह जगत बार बार बनता और नष्ट होता रहता है. अर्थात यह सृष्टि अनंत बार निर्मित अथवा प्रकट हो चुकी है, इस सृष्टि में अनंत बार सभ्यताए जन्म ले चुकी हैं और अनंत बार प्रलय को भी प्राप्त हो चुकी हैं. केवल हमारे लिए ही और केवल वर्तमान सृष्टि ही है, यह सत्य नहीं है.

इस भ्रम की निवृत्ति कनक रुचक दृष्टान्त की सहायता से, कर लेनी चाहिए.

दृष्टान्त इस प्रकार है. एक स्वर्णकार अपने बनाये गहनो की शुद्धत्ता और कलाकारी की लिए बहुत प्रसिद्द था, उसकी दुकान में कोई भी रचना अथवा स्वर्ण आभूषण ज़्यादा दिन तक टिक नहीं पाते थे, सभी अधिकतर तुरंत बिक जाते थे. यदि कोई आभूषण, एक माह तक नहीं बिकता था तो, वह स्वर्णकार उस आभूषण को गला कर नए आभूषण बनाने का आदेश दे देता था. एक बार उसने सोचा कि एक थोड़ा भारी स्वर्ण के कड़े बनाये जायें. यही सोच कर उसने ५० ग्राम ५० ग्राम के दो पुरुषों वाले कड़े, बहुत अद्भुत कलाकारी के साथ बनाये. कड़े बहुत बड़े और भारी थे, इसलिए उनका दाम भी बहुत अधिक था. स्वर्णकार ने वह कड़े दूकान के बीचों बीच एक सुरक्षित घेरे के अंदर रखे, ताकि लोग उसकी कलाकारी को देख सकें, और ऐसा प्रबंध किया कि, बाहर रास्ते में, आने जाने वाले लोग भी उन कड़ों की कलाकारी को देख कर उसे सराह सकें.

एक दिन नगर सेठ की पत्नी उसे स्वर्णकार की दूकान के सामने से गुजरी, उसने उन कड़ों को देखा और उसे बहुत अच्छे लगे. अभी तो वह किसी कार्य वश जल्दी जल्दी में जा रही थी, इसलिए उसने सोचा कि वापस आ कर हुए इन कड़ों को जरूर देखेगी. उसी दिन कड़ों को बने हुए लगभग १ माह हो गया, अपने नियम के अनुसार, स्वर्णकार ने कड़ों को गला कर उसकी कुछ छोटी छोटी अंगूठियां, गलोबन्द और एक मांग टीका बना दिया. कुछ दिन बाद नगर सेठ की पत्नी स्वर्णकार की दूकान में आयी, स्वर्णकार ने उसका बहुत स्वागत किया, क्योंकि नगर सेठ स्वरकार का

एक प्रमुख ग्राहक था. नगर सेठ की पत्नी ने स्वर्णकार से पूछा कि कुछ दिन पहले यहाँ २ बहुत सुन्दर पुरुषों वाले कड़े, ग्राहकों के लिए रखे हुए थे, आज दिखाई नहीं पड़ रहे? स्वर्णकार ने कहा, वोह कड़े १ माह तक नहीं बिके इसलिए उनको हमने अन्य आभूषण बनाने के लिए शायद गला दिए हैं. नगर सेठ की पत्नी ने कहा, मैं तो उनको ही लेने आयी थी. कृपया उनको दोबारा बना दें. स्वर्णकार ने कहा, बहुत बढ़िया, मैं अगले सप्ताह, पूर्णमासी को आपके घर दोनों कड़े पहुंचादूंगा यह कह कर स्वर्णकार ने नगर सेठ की पत्नी से माप का अंदाजा लिया और कड़ों के निर्माण का आदेश दे दिया.

अब यहां चिंतन का विषय यह है क्या, सोने को गला कर आभूषण बनाने और फिर गलाने और फिर दोबारा आभूषण बनाने में क्या सोने में कोई विकार अथवा अशुद्धि आएगी.
उत्तर है नहीं, सोने को अनंत बार गलाया और उससे अनंत बार आभूषण बनाये जा सकते हैं. इससे स्वर्ण में कोई विकार नहीं आता. इस तरह स्वर्ण ही कारण है हर तरह के आभूषणों का और आभूषण कलाकार द्वारा उस स्वर्ण को अलग रूप देने का नाम है. जैसे कंगन एक रूप है, अंगूठी अन्य रूप है.
इसलिए स्वर्ण सत कारण रूप है और आभूषण असत रूप है जो बनता और नष्ट होता रहता है. इस तरह यह सिद्ध होता है, कि आभूषण स्वर्ण से अलग भी नहीं है और सत भी नहीं है.

ठीक इसी तरह यह सृष्टि बार बार बन कर नष्ट होती रही है, और लगातार परवर्तित होती रहती है, तो क्या इससे ईश्वर या माया पर कोई असर होता है. उत्तर है नहीं, अनंत काल से इस पृथ्वी में शरीर उत्पन्न व नष्ट होते रहे हैं, सभी शरीर, इसी माटी, इसी जल, इसी वायु इसी अग्नि और इसी आकाश से बने थे और नष्ट हो कर इसी माटी, जल वायु आदि में मिल गए. और अब उसी माटी, जल, वायु, से अब वर्तमान के शरीर बने हैं जिनसे हम व्यवहार कर रहे हैं. फिर यह भी नष्ट हो जाएंगे और नए शरीर बन जाएंगे .
अर्थात उन शरीरों में जो माटी जल आदि था उसी माटी और जल का अंश हमारे अंदर है, इस में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है. केवल रूप व स्वरुप बदल बदल कर, यही माटी और जल, अलग अलग शरीरों के रूप में पृथ्वी में जन्मते, बढ़ते और नष्ट होते रहते हैं, और नष्ट व खंडित हो कर फिर माटी जल आदि में मिल जाते हैं

इस तरह न तो पांच महा भूतों पर, जिससे इस सृष्टि में जड़ वस्तुओं और शरीरों का निर्माण हुआ है, न ही ईश्वर पर और न ही आत्मा पर इसका कोई प्रभाव पड़ता है.

इस तरह स्वर्ण और रुचक अर्थात रूचि से बनायी वस्तु जैसे कंगन आदि, के दृश्टान्त से जगत अपने कारण से अलग और सत्य है, से इस भ्रम की निवृत्ति हो जाती है.

यह कह कर गुरु जी ने अपने शिष्य से कहा, तुम सब अब इस विद्या का चिंतन मनन और स्वाध्याय करना और लगातार इसी चिंतन में ध्यान भी करना. इससे तुम्हारा मन, तुम्हारी बुध्दि तुमको कभी दुखी नहीं कर पाएगी और सुख की प्राप्ति करते हुए, तुम्हारा ब्रह्मज्ञानी बनने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा.